Universe Journal of Education & Humanities ISSN 2348-3067
Volume-I, No. I, Feb.-2014, pp.80-83

धर्म की खोज–प्राचीन और अर्वाचीन

डा0 ओमप्रकाश प्रजापति, सहायक अध्यापक

सनातन धर्म इन्टर कालिज कंकरखेडा मेरठ उत्तर प्रदेश भारत।

धर्म शब्द संस्कृत की 'धृ' धातु से बना है जिसका अर्थ है धारण करना। अतः प्रत्येक सजीव या निर्जीव वस्तु का धर्म वही है जो वह धारण करता है। जैसे नमक का धर्म नमकीनपन, मिठाई का धर्म मिठास, पशु का धर्म पशुत्व, इसी प्रकार मनुष्य का धर्म मनुषत्व है। इस प्रकार धर्म शब्द व्यापक अर्थ ग्रहण करता हैं। जबकि पश्चिम में अंग्रेजी का 'रिलीजन' शब्द जो धर्म का पर्याय है, इसके समकक्ष नहीं है। धर्म शब्द का पर्याय मत, सम्प्रदाय, और पंथ इत्यादि को भी नहीं माना जा सकता है। क्योंकि ये धर्म की संकीर्ण विचारधाराएं हैं। अंग्रेजी का 'रिलीजन' Religion शब्द Legere और Ligare शब्द से व्युत्पन्न है। Legere का अर्थ चिन्तन करना, विचार करना है। अतः Religion शब्द का अर्थ ईश्वर चिन्तन करना है। जबकि Ligare का अर्थ आबद्ध करना है अर्थात् वह जो व्यक्तियों को एक सूत्र में बांध दे। इस प्रकार धर्म व्यक्तियों को संगठित करने वाला वह तत्व है, जो व्यक्तियों को एक सूत्र में बांधता है।

धर्म प्रत्येक व्यक्ति की आन्तरिक माँग और अनुभूति है। और यही माँग मानव को पशुओं से पृथक और श्रेष्ठतर बनाने में प्रेरणादायक और सहायक सिद्ध हुई है। क्योंकि भोजन वस्त्र और आवास की प्राथमिक मांगे भौतिक और मानव शरीर के सुरक्षार्थ हैं। जबकि धर्म की आकांक्षा अभौतिक और अध्यात्मिक है। धर्म का अस्तित्व उतना ही प्राचीन है जितना मानव जीवन का अस्तित्व। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति इसकी खोज अपने जीवन में कभी न कभी करता हैं चाहे यह प्राथमिक हो या न हो ।

प्रागैतिहासिक सभ्यताओं से ज्ञात हुआ है कि उस समय मानव प्राकृतिक शक्तियों की पूजा करते थे। उनके देवी– देवता और धार्मिक स्थान भी थे। कालान्तर में ये सभ्यताएं प्राकृतिक प्रकोप से ही नष्ट हो गईं। आदि मानव ने अपनी विकास यात्रा में प्राकृतिक शक्तियों की अधीनता स्वीकार कर, भय के वशीभूत होकर या सर्वोच्च सत्ता के प्रभाव को स्वीकार कर के धर्म को जीवन में अंगीकार किया। कालान्तर में प्रत्येक मानव समुदाय में देश,काल परिस्थिति के अनुकूल वैदिक, बौद्ध, जैन, सिख, यहूदी, पारसी, ईसाई, इस्लाम, आदि धर्मों का उदय हुआ। इन धर्मों के संस्थापकों ने मानव की पाशविक प्रवृत्तियों का रूपान्तरण करके मानवीय मूल्य और सदाचरण की शिक्षा देकर मानवता की स्थापना करने का प्रयत्न किया। इन संस्थापकों की उदारता और महानता के कारण ही इनका जनमानस पर इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि बलपूर्वक ईसाई और इस्लाम में धर्मान्तरण करने वाले मिशन भी इतना प्रभावित नहीं कर सके। राम, कृष्ण, शंकराचार्य, बुद्ध, महावीर स्वामी, गुरुनानक, जरथुस्त्र, ईसामसीह, मुहम्मद साहब और अनेक धार्मिक व्यक्तियों ने अकेले ही तत्कालीन जनमानस को इतना आन्दोलित किया कि वे उनकी शिक्षाओं का अक्षरशः पालन स्वेच्छा से करने लगे न कि बलपूर्वक । वास्तव में मानव जाति के इतिहास में शिक्षा का प्रारम्भ धार्मिक

क्षेत्र से ही हुआ है। अतः शिक्षा और धर्म का सम्बन्ध इनके अभ्युदय काल से ही है। मनुष्य को भौतिक जीवन की अपूर्णता के बोध ने धर्म की खोज के लिये विवश किया। प्रत्येक समाज में बहुत कम व्यक्तियों ने शाश्वत, सत्य, शक्ति, ज्ञान और आनन्द की खोज करने का श्रम किया है। उनमें से जो सफल हुए हैं उन्हें ही मानव समाज ने ज्ञानी, ऋषि, मुनि, महात्मा, महापुरुष, महावीर, गुरु, मसीह, पैगम्बर, भगवान,दैवीय अवतार, ईशदूत, और ईश्वर की उपाधि से विभूषित किया है।

मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में धर्मों ने महान योगदान किया है। किन्तु इन्हीं धर्मावलम्बियों और अनुयायियों ने अन्तःकरण में धार्मिक खोज बन्द करके केवल कर्मकाण्ड, और धार्मिक ग्रन्थों प्रचार–प्रसार करते हुए अन्धानुकरण और धार्मिक अनुशासन पर बल दिया। परिणामस्वरूप सभी धार्मिक समुदाय बन्द तालाब की भांति दुर्गन्धयुक्त, कूपमण्डूक तथा अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए संघर्षशील हो गये और मूल तत्व विलीन हो गए। यद्यपि अनेक धर्मों में धर्म सुधार आन्दोलन भी हुए। विभिन्न धर्मों की मान्यता, विश्वास, सिद्धान्त, पद्धति आदि में भिन्नताओं के कारण मानव विभिन्न धार्मिक समुदायों और सांस्कृतियों में विभक्त हो गया। जिस प्रकार धार्मिक शिक्षा ने मानव समाज को समुन्नत बनाया उसी प्रकार कालान्तर में तथाकथित धार्मिक शिक्षा ने मानव का अधःपतन भी किया है। आधुनिक काल में धार्मिक मान्यता और सिद्धान्तों को विज्ञान ने जो चुनौती दी है उससे परम्परागत धार्मिक विश्वास और मान्यताएं टूटी हैं। लेकिन धर्म की मांग को विज्ञान ने पूरित नहीं किया बल्कि धर्म के औचित्य पर विज्ञान ने प्रश्न चिन्ह अवश्य लगाया है। आधुनिक युग में धर्म की खोज और व्याख्या वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक आधारों पर जब से की जाने लगी तब से धार्मिक आधार पर समस्त मानव जाति को एकता के सूत्र में बाँधना और मानवता की स्थापना करना सम्भव हो गया है। वर्तमान विश्व में, सम्मोहन, टेलीपैथी, फेथहीलिंग, संकल्पशक्ति, मन्त्र विज्ञान, संगीत के मानसिक प्रभाव, योग, प्राणायाम, ध्यान, रेकी इत्यादि जो केवल धार्मिक क्रियाएं मानी जाती थी आज ये विज्ञान और मनोविज्ञान द्वारा प्रभावकारी सिद्ध हैं और धर्मों को वैज्ञानिक आधार प्रदान कर रही हैं। अतः आज भी विज्ञान को धर्म से सम्बन्धित करने की आवश्यकता है; परम्परागत धर्म से नहीं बल्कि मानवतावादी धर्म से।

प्राचीन और मध्यकाल में जन शिक्षा का प्रबन्धन, संचालन एवं निर्देशन गुरुकुलों, आश्रमों, मन्दिरों, मठों, विहारों, संघों, चर्चों, मदरसों आदि द्वारा किया जाता था जिसमें धार्मिक, नैतिक एवं दार्शनिक शिक्षा प्रमुख थी। आधुनिक समय में भी यूरोप में चर्च, पश्चिम एशियाई देशों में मकतब और मदरसे भारत में आश्रम, मन्दिर, मठ, विहार आदि धार्मिक शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। भारत में आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसाफिकल सोसाइटी, अरविन्द आश्रम और कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन, देवबन्द आदि ने प्रगतिशील मानवतावादी धर्म पर आधारित शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की और स्वतन्त्र भारत की धार्मिक शिक्षा में महान योगदान किया है।

सभ्यता जितनी प्राचीन है उतना ही धर्म प्राचीन है। आदि धर्म से लेकर मानवतावादी धर्म तक धर्म की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं की जा सकती है। क्योंकि विभिन्न देशों सभ्यता और संस्कृतियों में धर्म की आधारभूत मान्यताएं भिन्न–भिन्न हैं। कालक्रम के अनुसार आदिम धर्म में शक्तिवाद (Dynamism) और सर्वात्मवाद (Animism) का प्रमुख स्थान था। क्योंकि आदिम जातियों की समस्याएं भी आदिम स्तर की थीं। उनके जीवन का उद्देश्य ही आत्म–संरक्षण, जाति–संरक्षण और समाज–संरक्षण था। विश्व में आदि काल से आधुनिक काल तक धर्म के इतने प्रकार हैं कि ऐसे सर्वमान्य सिद्धान्त खोजना सम्भव नहीं है जो सभी धर्मों में मान्य हो। पश्चिमी जगत के दृष्टिकोण से धर्म की समकालीन परिभाषा **विलियम ब्लेकस्टोन** ने इस प्रकार की है। *''धार्मिक विश्वास वह है जो किसी निष्ठा के विषय के प्रति सम्पूर्ण आत्मबन्धन के आधार पर जीवन की समस्याओं की ओर सर्वव्यापक रीति से व्यक्ति को अभिमुख करें।* यह परिभाषा धर्म की व्यापक परिभाषा कही जा सकती है। यहां

आत्मबन्धन का अर्थ सम्पूर्ण व्यक्तित्व को जिस पर निष्ठा और आस्था हो, उसको समर्पित कर देना है। आस्था का विषय साकार, निराकार या कोई भी सत्ता हो सकती है। इसलिए इस परिभाषा में ईश्वरवाद, मानवतावाद, जैन और बौद्ध धर्म यहां तक कि साम्यवाद भी आस्था के विषय में समाहित है। अतः यह धर्म की व्यापक और समीचीन परिभाषा है। भारतीय दर्शन में भी ऐसे धर्म की परिभाषाएं हैं जो सदगुणों के स्तम्भों पर धर्म का भवन स्थापित करती हैं। **मनुस्मृति** के अनुसार– *'धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ।।'* इसमें धर्म के ये दस लक्षण ये बताये गये हैं। धैर्य, क्षमा, दमन, अस्तेय, (चोरी न करना), शौच (पवित्रता), इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में करना), विवेक (बुद्धि), विद्या, सत्य और अक्रोध। इस प्रकार लक्षणों पर आधारित यह धर्म की परिभाषा किसी धर्म विशेष की नहीं है बल्कि मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक कही जा सकती है। जो परम्परागत धर्मों से भिन्न है। प्रमुख रूप से धर्म के दो प्रकार हैं– एक, उपासना मूलक धर्म और दूसरा, समाधिमूलक धर्म।

उपासना मूलक धर्म

इसके अन्तर्गत वे सभी धर्म आ जाते हैं जो किसी इष्ट या आराध्य वस्तु को अनिवार्य मानते हैं। इसमें सभी ईश्वरवादी धर्म आ जाते हैं चाहे ऐकेश्वरवादी धर्म हों या अनेकेश्वरवादी धर्म जिसमें ईसाई, इस्लाम, यहूदी, वैदिक या सनातन धर्म या हिन्दू धर्म, सिख धर्म, पारसी धर्म आदि।

समाधिमूलक धर्म

उपासना मूलक धर्म के विपरीत समाधिमूलक धर्म है जिसमें अद्वैतवादी, वेदान्त, जैन और बौद्ध धर्म हैं। इन धर्मों में ईश्वर का कोई स्थान नहीं है और कोई आराध्य वस्तु भी नहीं है। परम्परागत धर्मों के स्थान पर नवीन मानवतावादी धर्म जो मनोविज्ञान और विज्ञान पर आधारित है वही धर्म मानव को एकता के सूत्र में बांध सकता है और मानव जीवन को उच्च लक्ष्यों की ओर अग्रसर कर सकता है। मानवतावाद आधुनिक धर्म का वह रूप है जिसके अनुसार बिना मानव से श्रेष्ठतर सत्ता की सहायता के मानव अपने ही प्रयास से अपना सर्वोच्च विकास कर सकता है। मानवतावाद में आध्यात्मिक सत्ताओं को अस्वीकृत नहीं किया गया है बल्कि उनके सम्बन्ध में मनन, श्रवण, तथा चिन्तन करना अनावश्यक माना जाता है। मानवतावाद का मुख्य उद्देश्य है व्यक्ति का आत्मविकास और साथ ही समाज का विकास। बौद्ध और जैन धर्म को मानवतावादी धर्म कहा जाता है लेकिन इन धर्मों में मानव केन्द्रित विकास को धर्म का अन्तिम लक्ष्य नहीं बल्कि निर्वाण और मोक्ष प्राप्ति को अन्तिम आध्यात्मिक लक्ष्य माना जाता है। इसी प्रकार ओशो और जे० कृष्णमूर्ति ने ध्यान को धर्म का मूल तत्व कहा है। पश्चिम में मानवतावादी धर्म का प्रारम्भ स्टोइक, एपीक्यूरस और अगस्त काम्टे के विचारों से हुआ है। आधुनिक युग में मोर्ले, लिवमैन तथा कोर्लिस लामोण्ट के मतों में मानवतावाद प्रखर हुआ है। पश्चिमी विचारक श्वेत्सर ने भारतीय धर्मों को आत्मपूर्णता का धर्म कहा है जिसमें समाज सेवा नहीं है। यही बात बर्गसां ने भी कही है। किन्तु यह असत्य कथन है क्योंकि बौद्ध धर्म का *'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय'* की प्रेरणा से सम्पूर्ण एशिया में प्रचार प्रसार किया गया और जन समुदाय ने उसे स्वेच्छा से स्वीकार किया। हिन्दू धर्म में नर सेवा को नारायण सेवा कहा गया है। अतः भारतीय धर्मों में जैन, बौद्ध और अद्वैतवादी वेदान्ती धर्मों ने निष्काम कर्म और *'आत्मनो मोक्षार्थ जगद्हिताय च'* के उद्देश्य को चरितार्थ किया है। और धर्म को अर्थ, काम और मोक्ष से प्राथमिक महत्व दिया है। धर्म को अफीम की गोली कहने वाला मार्क्सवादी भी कार्ल मार्क्स के 'दास कैपिटल' ग्रन्थ की कसौटी पर मानवता को कसता है। जे० कृष्णमूर्ति साम्यवाद को परम्परागत धर्म की भांति जड़वादी आधुनिक धर्म की संज्ञा देते हैं। **जे० कृष्णमूर्ति** कहते हैं।

''यदि आप संगठित धर्मों के स्वभाव का परीक्षण करें तो आपको ज्ञात होगा कि समस्त धर्म निश्चित रूप से एक जैसे ही है, फिर चाहे वह हिन्दू धर्म हो या बौद्ध धर्म हो या ईसाई या इस्लाम धर्म हो या फिर वह साम्यवाद हो जो

आधुनिक धर्म का ही एक रूप है।'' थियोसॉफिकल सोसाइटी का आदर्श वाक्य है। ***'सत्य से ऊँचा कोई धर्म नहीं है।'***3 इसी प्रकार कृष्णमूर्ति प्रचलित धार्मिक मान्यताओं के स्थान पर वास्तविक धर्म की सतत् खोज को वर्तमान मनुष्य के लिए आवश्यक मानते हैं। क्योंकि परम्परागत धर्मों ने मानवीय प्रेम के स्थान पर आपसी संघर्ष को प्रोत्साहित किया है। कृष्णमूर्ति परम्परागत धर्म के स्थान पर नवीन धर्म की स्थापना के लिए आशान्वित हैं। उनका कथन है। "हम इतिहास के एक ऐसे मोड़ पर आ गये हैं जहाँ हमें एक नवीन संस्कृति का, एक पूर्णतया भिन्न प्रकार के अस्तित्व का सृजन करना है, जो उपभोक्तावाद तथा उद्योगवाद पर आधारित न होकर धर्म के वास्तविक स्वरूप पर आधारित हो। शिक्षा द्वारा एक ऐसा मन कैसे उत्पन्न किया जाता है? जो पूर्णतया नवीन है, जो महत्वाकाँक्षी नहीं है, जो असाधारण रूप से सक्रिय एवं कार्यक्षम है। नित्य प्रति के जीवन में जो सत्य है और अन्त में जो धर्म है उसका वास्तविक साक्षात् इसी मन को होता है।"4 राष्ट्रवाद या राष्ट्रभक्ति या राजधर्म भी धर्म का एक रुप है। **कृष्णमूर्ति** कहते हैं।*''राष्ट्रवाद संगठित धर्मों की भांति मानव और मानव के बीच विभाजन लाता है। राष्ट्रवाद द्वारा आप भ्रातृत्व नहीं ला सकते हैं।''* 5 **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका** के अनुसार। *''राष्ट्रीयता एक ऐसी मनोदशा है जिसमें व्यक्ति अपने राष्ट्रीय राज्य के प्रति उच्चतर भक्ति भावना का अनुभव करता है।''* आधुनिक युग ने मानवतावाद को विज्ञान पर बल देकर उसे बुद्धिगम्य और साक्षात् अनुभव पर आधारित किया है, किन्तु आत्मबोध या आत्मज्ञान, आत्मानुसन्धान और आत्म समर्पण के बिना विश्व कल्याण और विश्व में मानवता की स्थापना असम्भव और कल्पना मात्र है। भारतीय संस्कृति *'परहित सरिस धर्म नहिं भाई'* के पथ पर सदैव चली है, जिसमें स्वधर्म भी समाहित है। भगवदगीता का संदेश है– ''स्वधर्मे निधनमश्रेयः'' अर्थात अपने धर्म का पालन करते हुए मृत्यु भी आ जाए तो यह श्रेष्ठतर है। यहॉ पर यह जानना आवश्यक है कि स्वधर्म का अर्थ हिन्दू, बौद्व, जैन, सिख, पारसी, यहूदी, ईसाई और इस्लाम जैसे धर्मों को स्वधर्म नहीं कहा गया, क्योकि जिस काल में भगवदगीता के ये वचन प्रकट हुए तब इन धर्मों का नाम और अस्तित्व नहीं था। स्वधर्म का अर्थ निश्चित ही व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके प्राकृतिक स्वभाव से सम्बन्धित है जो आत्मानुसन्धान द्वारा जाना जा सकता है। अतएव स्वधर्म की खोज और उसका पालन ही श्रेयस्कर है। विश्व विख्यात तत्ववेत्ता **अर्नाल्ड टायनवी** ने कहा है।*'धर्म भविष्य में भी मानव सभ्यता का स्तम्भ बना रहेगा।'*

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. ब्लैक स्टोन डब्लू० टी०, द प्राब्लम आफ रिलीजियस नॉलेज, ए स्प्रेक्टम बुक, प्रेंटिस हाल, 1963, पृ० 44.
2. जे० कृष्णमूर्ति, संस्कृति का प्रश्न, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया, वाराणसी, पृ० 226
3. Krishna P., "Was Krishnamurti a Theosophist?". The Theosophist : May, 1995,The Theosophical Publishing House, Adyar, Madras, P-305.
4. कृष्णमूर्ति जे०, शिक्षा संवाद, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया, वाराणसी, 1998, पृ० 4
5. J. Krishnamurti, Bulletin 1996/1, Krishnamurti Foundation India , Chennai ,P 18.
6. W.T. Blacl Stone, the Problem of religious knowledge, A spectryn viij, prentice Hall: P-44